इकाई 23 भुगतान-शेष

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 भुगतान-शेष की अवधारणा एवं इसकी उपादेयता
  23.2.1 चालू खाता एवं पूँजी खाता
  23.2.2 भुगतान-शेष
23.3 भुगतान-शेष एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ
23.4 भारत के भुगतान-शेष की प्रवृत्तियां
  23.4.1 प्रथम समयावधि
  23.4.2 द्वितीय समयावधि
  23.4.3 तृतीय समयावधि
  23.4.4 चतुर्थ समयावधि
23.5 भुगतान-शेष के घाटों के कारण
23.6 समस्या के समाधान के लिए अपनाए गए उपाय
23.7 भारत में निर्यात प्रोत्साहन
  23.7.1 निर्यात प्रोत्साहन का औचित्य
  23.7.2 निर्यात प्रोत्साहन के लिए उठाए गए कदम
  23.7.3 निर्यात प्रोत्साहन कार्यक्रम में कमियाँ
23.8 निर्यात-युक्ति
23.9 सारांश
23.10 शब्दावली
23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
23.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यापार-शेष और भुगतान-शेष में भेद कर पाएँ;
- चालू खाते एवं पूँजी खाते में विभेद की समीक्षा कर पाएँ;
- भुगतान-शेष की अवधारणा तथा इसकी उपादेयता बतला सकें;
- निर्यात प्रोत्साहन की आवश्यकता पर प्रकाश डाल सकें;
- भारत सरकार के निर्यात प्रोत्साहन कार्यक्रम का मूल्यांकन कर सकें;
- निर्यात प्रोत्साहन के वास्ते समुचित उपाय सुलझा पाएँ, तथा
- भारत सरकार द्वार भुगतान-शेष के घाटों से उत्पन्न समस्या से निपटने के लिए उठाए गए कदमों का मूल्यांकन कर सकें।

23.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने स्वतंत्र भारत के विदेशी व्यापार के ढाँचे में होने वाले परिवर्तनों का मूल्यांकन किया था। विदेशी व्यापार समग्र अन्तरराष्ट्रीय संव्यवहारों का मात्र एक हिस्सा है।

वस्तुओं की तरह ही श्रमिक, पूँजी और कच्चे माल का लेन-देन भी बराबर सभी देशों के बीच होता रहता है। इन सभी संव्यवहारों के बदले एक देश दूसरे देशों से विदेशी मुद्रा में आय प्राप्त करता है और साथ ही विदेशों से प्राप्त माल एवं सेवाओं का विदेशी मुद्रा में भुगतान करता है। इन संव्यवहारों का उचित लेखा-जोखा रखे जाना अनिवार्य है। इसी तरह के लेखे की सहायता से ही किसी देश को इस बात की स्पष्ट जानकारी हो पाती है कि वह किस हद तक विदेशी स्रोतों पर निर्भर है और विदेशी साधन आंतरिक विकास में कितना योगदान दे पा रहे हैं। आर्थिक संव्यवहारों के इस लेखे को ही भुगतान-शेष कहते हैं।

23.2 भुगतान-शेष की अवधारणा एवं इसकी उपादेयता

भुगतान-शेष का आशय उन सभी अन्तरराष्ट्रीय संव्यवहारों के लेखे-जोखे से है जिसमें वित्तीय वर्ष में एक अर्थव्यवस्था की दृश्य एवं अदृश्य मदों के आयात-निर्यात का विवरण होता है।

23.2.1 चालू खाता एवं पूँजी खाता

सरल अध्ययन की दृष्टि से भुगतान-शेष को दो भागों में बाँटा जा सकता है। ये भाग हैं: 1) चालू खाते पर भुगतान-शेष, एवं 2) पूँजी खाते पर भुगतान-शेष

1) **चालू खाते पर भुगतान-शेष (Current Account on Balance of Payments)** को पुनः दो उप-भागों में बाँटा जा सकता है : (क) व्यापार-शेष, एवं (ख) अदृश्य मदों अथवा सेवाओं में व्यापार का शेष।

क) **व्यापार-शेष** (Balance of Trade) : इसमें एक देश द्वारा एक वर्ष के दौरान किए गए निर्यात एवं आयात का लेखा तैयार किया जाता है। उल्लेखनीय है कि इस लेखे में केवल वस्तुओं अथवा दृश्य मदों (visible items) के निर्यात और आयात को ही जोड़ा जाता है। एक वर्ष के दौरान किए गए निर्यात के मूल्य (X) उसी अवधि में इस देश द्वारा प्राप्त आयात के मूल्य (M) से कम भी हो सकते हैं अथवा अधिक भी या दोनों ही बराबर भी हो सकते हैं। इस प्रकार, एक वर्ष के दौरान व्यापार-शेष (BOT) निम्न में से कोई एक रूप धारण कर सकता है :

i) व्यापार-शेष में अतिरेक (Surplus in BOT) यदि X<M;

ii) व्यापार-शेष में अतिरेक (Surplus in BOT) यदि X>M;

iii) व्यापार-शेष में संतुलन (Balance in BOT) यदि X=M.

ख) **सेवाओं में व्यापार को शेष** (Balance of Trade in Services) : इस लेखे में वस्तुओं के आयात-निर्यात छोड़कर एक देश द्वारा शेष विश्व के साथ बाकी जो सभी संव्यवहार किए जाते है उन सभी को शामिल करते हैं। इन विभिन्न संव्यवहारों को हम अदृश्य मदों में व्यापार की संज्ञा देते हैं। इन विभिन्न अदृश्य मदों को हम पाँच वर्गों में बाँट सकते हैं: (i) सेवाएँ, जैसे बैंकों की सेवाएँ, बीमा, जहाजरानी, हवाई सेवाएँ, डाक की सेवाएँ, आदि (ii) विनियोग से आय, जैसे विदेशियों द्वारा किए गए प्रत्यक्ष निवेश या पोर्टफोलियो निवेश या किसी अन्य रूप के निवेश पर प्राप्त लाभांश या ब्याज की राशि, द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय ऋणों से अर्जित ब्याज की राशि, आदि (iii) पर्यटकों का एक देश से दूसरे देशों को आना-जाना, (iv) सरकारी हस्तांतरण, एवं (v) निजी हस्तांतरण। ये सभी संव्यवहार दो तरफा होते हैं। उदाहरण के लिए भारत शेष विश्व से ये सभी

सेवाएँ प्राप्त भी करता है और शेष विश्व को सभी सेवाएँ प्रदान भी करता है। भारत द्वारा जब ये सेवाएँ प्रदान की जाती हैं तो भारत को शेष विश्व से विदेशी मुद्रा में आय प्राप्त होती है जिसे चालू आगम (Current Receipts) या (R) का नाम दिया जाता है। इसी तरह विदेशों द्वारा भारत को प्रदान की गई सेवाओं के बदले में भारत द्वारा कीमत चुकाई जाती है। जिसे चालू भुगतान (Current Payment या P) का नाम दिया जाता है। एक वर्ष के दौरान R के मूल्य P के बराबर, P से अधिक अथवा P से कम हो सकते हैं। अर्थात् व्यापार-शेष की तरह सेवाओं में व्यापार के शेष (BOI) के भी तीन संभव रूप हैं :

i) BOI में घाटे यदि R<P,

ii) BOI में अतिरेक यदि R>P, एवं

iii) BOI में संतुलन यदि R=P।

BOT एवं BOI के योग को चालू खाते पर भुगतान-शेष (BOP on Current Account) का नाम दिया जाता है।

BOP on Current Account में एक तरफ एक देश द्वारा शेष विश्व से प्राप्त होने वाली विदेशी मुद्रा तथा दूसरी तरफ शेष-विश्व को किए जाने वाले भुगतानों का लेखा-जोखा रखा जाता है। स्पष्टतः पुनः निम्न तीनों में से कोई भी स्थिति सम्भव हो सकती है :

1) चालू खाते में अतिरेक यदि प्राप्तियाँ भुगतानों से अधिक हैं,

2) चालू खाते में घाटे यदि प्राप्तियाँ भुगतानों से कम हैं, एवं

3) चालू खाते में संतुलन यदि प्राप्तियाँ भुगतानों के बराबर है।

1) चालू खाते में अतिरेक से यह अभिप्राय है कि इस देश द्वारा इस वर्ष कमाई गई विदेशी मुद्रा की राशि इसके द्वारा खर्च विदेशी मुद्रा की राशि से अधिक है। ऐसी परिस्थिति में यह देश चाहे तो अन्य देशों को बची हुई विदेशी मुद्रा ऋण के रूप में दे सकता है। अन्यथा अपने ऋणों के भार को कम करने के लिए अपने ऋणदाताओं को लौटा सकता है।

2) इसके विपरीत, यदि इसके समक्ष भुगतान-शेष के घाटे की स्थिति बन आई है तो इसे निम्न दो विकल्पों में से चुनना होगा। पहला, घाटे के भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा के भंडार कम हो जाएँगे। दूसरा, घाटे के भुगतान के लिए विदेशों से ऋण लिए जा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में इस देश के भावी दायित्वों की राशि बढ़ जाएगी।

3) यदि भुगतान-शेष संतुलन में पाए जाते हैं तो इसके बारे में इस देश को किसी भी तरह के विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होगी।

2) **पूँजी-खाते पर भुगतान-शेष (Balance of Payments on Capital Account)** : पूँजी खाते में चालू खाते के संव्यवहारों के कारण देश की विदेशी निधियों एवं दायित्वों में हुए परिवर्तनों तथा पूँजी के अन्तरण का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है।

जैसा कि हम चालू खाते का वर्णन करते हुए उल्लेख कर आए हैं कि यदि देश के चालू खाते में अतिरेक पाए जाते हैं तो यह देश अन्य देशों को ऋण दे सकता है। इसी तरह यदि चालू खाते में घाटे पाए जाएँ तो इन घाटों की पूर्ति विदेशों से ऋण लेकर की जा सकती है। इन सभी संव्यवहारों को पूँजी खाते में जोड़ा जाता है। विदेशों से प्राप्त पूँजी को पूँजी

को दायित्वों (debits) के रूप में।

पूँजी खाते की यदि किसी देश के चालू खाते में अतिरेक है तो पूँजी खाते में इसके दायित्व इसकी प्राप्तियों से अधिक होने चाहिए अर्थात् चालू खाते में अतिरेक की स्थिति में पूँजी खाते में घाटा बनाना होगा। अतिरेक और घाटा मिलकर भुगतान-शेष में संतुलन स्थापित कर देंगे।

इसी तरह, यदि चालू खाते में घाटे पाए जाते हैं तो यह आवश्यक है कि यह देश विदेशों से अतिरेक पूँजी जुटाए जिससे कि पूँजी खाते में अतिरेक बन पाएँ। इन अतिरेकों से चालू घाटों का भुगतान किया जा सकता है।

संक्षेप में

शेष विश्व से निवेश पूँजी का प्रवाह = चालू खाते में घाटा + पुराने ऋणों की निवल अदायगी

23.2.2 भुगतान-शेष (Balance of Payments)

'भुगतान-शेष' चालू खाते पर भुगतान-शेष और पूँजी खाते पर भुगतान-शेष के जोड़ को प्रस्तुत करते हैं। चूँकि चालू खाते और पूँजी खाते के शेष विपरीत दिशा में इस प्रकार परिवर्तित होंगे कि चालू खाते के घाटे पूँजी खाते के अतिरेकों के बराबर होंगे भुगतान शेष सदैव अनिवार्यतः ही संतुलन में होंगे। अन्य शब्दों में, एक देश का समग्र भुगतान-शेष अनिवार्यतः संतुलन में ही होगा।

बोध प्रश्न 1

1) भुगतान-शेष से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) व्यापार की दृश्य मदों एवं अदृश्य मदों में भेद कीजिए। प्रत्येक के तीन उदाहरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) व्यापार-शेष एवं भुगतान-शेष में भेद कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) किन परिस्थितियों में पूँजी खाते में अतिरेकों की आवश्यकता होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

23.3 भुगतान-शेष एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ

विकास अर्थशास्त्र के विद्यार्थी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि प्रायः सभी अल्पविकसित देश विकास-क्रिया के प्रारम्भिक चरणों में शेष-विश्व से अपनी विकास-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण लेते हैं। विकास-प्रक्रिया में विदेशों से पूँजीगत सामान, कच्चा माल, उपभोक्ता, वस्तुएँ एवं विभिन्न प्रकार के उपकरण आयात करना आवश्यक होता है। इन सभी वस्तुओं को खरीदने के लिए पर्याप्त में विदेशी मुद्रा कमाने में विकासशील देश असमर्थ होते हैं। अतः विदेशों से ऋणों पर निर्भरता बनी रहती है। किन्तु विकास-क्रम में जैसे-जैसे आधुनिकतम उपकरणों और तकनीक की सहायता से घरेलू उत्पादन-ढाँचे का विकास होता है इस देश की आयात आवश्यकता कम होती जाती है जबकि निर्यात सम्भवनाएँ बढ़ती जाती हैं। इसी क्रम में यही देश निवल निर्यातक बन अतिरेक विदेशी मुद्रा अर्जित करता है। इस अतिरेक का प्रयोग अतीत के ऋणों को चुकाने एवं विदेशों में निवल निवेश करने के लिए किया जाता है। अर्थात्, यह देश ऋणदाता उभरकर आता है।

23.4 भारत के भुगतान-शेष की प्रवृत्तियाँ

समय-समय पर भारत भुगतान-शेष के दबाव को या तो घरेलू कठिनाइयों अथवा विदेशी कारकों के कारण महसूस करता रहा है। योजनाकाल की समस्त अवधि को भुगतान-शेष के विश्लेषण हेतु, तीन आधारों पर विभाजित किया जा सकता है : (i) भुगतान-शेष की समस्या की प्रकृति का आधार, (ii) समस्त समष्टिगत वातावरण का आधार, तथा (iii) बाह्य सहायता की स्थिति का आधार। इन तीनों आधारों पर समस्त समयावधि को चार उप-अवधियों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (1) वर्ष 1975-76 (प्रथम समयावधि); (2) वर्ष 1976-77 से 1979-80 तक (दूसरी समयावधि); (3) 1980-81 से 1989-90 (तीसरी समयावधि); (4) वर्तमान प्रास्था 1991-99 (चौथी अवधि)।

23.4.1 प्रथम समयावधि (वर्ष 1975-76 तक) (First Sub-period)

यह सम्पूर्ण अवधि के भुगतान-शेष के लिए बहुत कठिन रही, आंशिक रूप से इसलिए कि आयात की आवश्यकताओं की तुलना में निर्यात धीमी गति से बढ़ रहे थे, तथा विदेशी कारकों की प्रतिकूलता के कारण, कठोर आयात नियंत्रणों (परिणामात्मक नियंत्रणों के माध्यम से) तथा विदेशी विनिमय किसानों के बावजूद चालू खाते का घाटा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 1.8 प्रतिशत था। विदेशी विनिमय निधियाँ बहुत नीचे स्तर तक बनी रहीं

जो कि तीन माह के आयात को पूरा करने के लिए भी अपर्याप्त थीं। चालू खाते के घाटे का लगभग 90 प्रतिशत रियायती दरों पर विदेशी सहायता का अन्तर्वाह करके पूरा किया गया।

23.4.2 द्वितीय समयावधि (1976-77 से 1979-80 तक) (Second Sub-period)

इसको भुगतान-शेष की स्वर्णिम अवधि कहा जाता है। भारत के चालू खाते में GDP के 0.6 प्रतिशत के बराबर अधिशेष उत्पन्न हुआ तथा लगभग 7 माहों के आयातों के लिए विदेशी विनिमय निधियाँ उपलब्ध थीं। यद्यपि निर्यातों में वृद्धि हुई किन्तु BOP में नाटकीय वृद्धि का प्रमुख कारण शुद्ध अदृश्य मदों में वृद्धि थीं। वर्ष 1974-75 में शुद्ध अदृश्य मदों का मूल्य 193 करोड़ रुपये था जो कि वर्ष 1979-80 में बढ़कर 2.486 करोड़ रुपये हो गया।

23.4.3 तृतीय समयावधि (1980 से 1989-90 तक) (Third Sub-period)

यह अवधि छठी और सातवीं योजना की अवधि थी। छठी योजना को उस समय लागू किया गया जबकि देश के समक्ष गम्भीर (BOP) संकट था। विस्तारक कोष सुविधा (Extended Fund Facility) के अन्तर्गत भारत ने वर्ष 1981 में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के 5 बिलियन SDR के ऋण का समझौता किया। सातवीं योजना के आरम्भ से ही व्यापार-शेष और भुगतान-शेष के घाटे में वृद्धि होने लगी और योजना के अंतिम दो वर्षों में स्थिति बहुत गंभीर हो गई।

23.4.4 चतुर्थ समयावधि (1991 के पश्चात्) (Fourth period)

वर्ष 1990-91 में BOP संकट अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जबकि चालू खाते का घाटा GDP का 3.26 प्रतिशत हो गया जैसा कि तालिका-1 से स्पष्ट होगा।

तालिका-1 : भारत के भुगतान-शेष के प्रमुख संकेतक

(GDP के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार-शेष	निवल अदृश्य	चालू खाता
1985-90	5.1	8.3	−3.2	0.9	−2.3
1990-91	6.2	9.4	−3.2	−0.1	−3.2
1991-92	7.3	8.3	−1.1	0.7	−0.4
1992-93	7.8	9.8	−2.0	0.2	−9.8
1993-94	8.8	9.7	−0.9	0.5	−0.4
1994-95	8.8	10.5	−1.6	0.8	−0.8
1995-96	8.9	12.0	−3.1	1.5	−1.6
1996-97	8.6	12.3	−3.7	2.6	−1.3
1997-98	8.5	11.4	−3.2	2.2	−1.0
1998-99	8.2	11.4	−3.2	2.2	−1.0

भारत के समक्ष BOP घाटे का गंभीर संकट बन आया था। इससे निपटने के लिए समुचित नीति अपनाई गई। वर्ष 1992-93 तक स्थिति पर काबू पा लिया गया था हालाँकि घाटों का दबाव बना रहा। उसके बाद से BOP में बराबर सुधार जारी है हालाँकि हम संकट से पूरी तरह से बाहर नहीं आ पाए हैं।

23.5 भुगतान-शेष के घाटों के कारण

विकास-प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण से भारत को भुगतान-शेष के घाटों का सामना करना पड़ा है। यहाँ हम समस्त स्थिति पर एक-साथ विचार करेंगे और उन प्रमुख कारकों पर प्रकाश डालेंगे जोकि इन घाटों के लिए ज़िम्मेदार रहे हैं। हम हाल के घटनाचक्र पर विशेष रुचि रखेंगे।

1) **व्यापार-शेष के घाटे**

जैसा कि अपेक्षित ही था विकास-क्रम में अर्थव्यवस्था की आयात-वस्तुओं की माँग निरन्तर बढ़ती रही है जबकि निर्यातों में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाई। परिणामतः व्यापार-शेष के घाटे निरन्तर बढ़ते गए।

इधर कुछ वर्षों से जब निर्यात-वृद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया निर्यातों की वृद्धि दर उत्साहजनक नहीं है। किन्तु निर्यातों के साथ ही आयात भी तेज गति से ही बढ़ते रहे हैं। बल्कि जैसे-जैसे अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा कड़ी होती जा रही है भारतीय उद्योगों की आयात-गहनता भी बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप व्यापार-शेष के घाटे अब भी उत्तरोत्तर बढ़ते ही जा रहे हैं।

2) **अदृश्य मदों के अतिरेक में गिरावट**

अतीत में भारत अदृश्य मदों के व्यापार में अतिरेक कमाता रहा है। ये अतिरेक प्रमुख रूप से दो कारणों से उत्पन्न होते रहे हैं : पहला, विदेशों में काम करने वाले भारतीयों द्वारा अपनी आय का भारत को प्रेषण तथा दूसरा विदेशी पर्यटकों से प्राप्त शुद्ध आय। किंतु इधर पिछले चंद वर्षों से इस संदर्भ में स्थिति उतनी मजबूत नहीं रही है। विदेशों से प्रेषित की जाने वाली आय अथवा पर्यटकों से प्राप्त आय में एक ओर कोई विशेष सुधार नहीं दिखलाई देता और दूसरी ओर विदेशियों द्वारा भारत में किए गए निवेश पर लाभांश, कमीशन आदि के रूप में प्राप्त आय में वृद्धि होती जा रही है। भारत में विदेशी निवेश की राशि जैसे-जैसे बढ़ेगी अदृश्य मदों के अतिरेक में उत्तरोत्तर गिरावट अपेक्षित है।

3) **विदेशी ऋण-सेवाओं का बढ़ता बोझ**

विदेशी-ऋण-सेवाओं का बढ़ता बोझ भुगतान-शेष के घाटों के अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है। ऋण-सेवा की राशि को जो वर्ष 1989-90 में 7.6 बिलियन थी 1998-99 में बढ़कर 10.73 बिलियन हो गई। ऋण-सेवाओं की राशि में सारी वृद्धि दो कारकों का परिणाम है : एक, विदेशी ऋण का बोझ निरन्तर बढ़ता जा रहा है, और दूसरा कुल विदेशी ऋण में उस ऋण का अनुपात कम होता जा रहा है जो कि हमें रियायती दरों पर प्राप्त हो रहा था। ऋण के लिए हमें खुले बाज़ार की दरें स्वीकार करनी पड़ रही हैं जोकि स्वभावतः ऊँची हैं। निकट भविष्य में भी ऊँचे ब्याज की दर पर ऋण स्वीकार करने की बात से इंकार नहीं किया जा सकता।

4) **रियायती सहायता मिलने की धूमिल सम्भावनाएँ**

आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरण में भुगतान-शेष के घाटों के भुगतान के लिए आसान

शर्तों पर विदेशी सहायता उपलब्ध हो रही थी। परिणामतः भुगतान-शेष के घाटे चिन्ता का विषय नहीं थे। इधर पिछले कुछ वर्षों से आसान शर्तों पर विदेशी सहायता अतीत की बात बनकर राशि में विदेशी सहायता उपलब्ध करवाते हैं। (i) विकसित देश अपेक्षाकृत कम राशि में विदेशी सहायता उपलब्ध करवाते हैं। (ii) ऋणदाताओं में यह धारणा बन गई है कि विकास की वर्तमान अवस्था में भारत को रियायती सहायता की आवश्यकता नहीं है बल्कि भारत व्यावसायिक बाज़ारों में अपनी आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त राशि जुटा सकता है। (iii) चीन व पूर्वी यूरोप के देश विकसित देशों से रियायती सहायता की अपेक्षा करने लगे हैं। (iv) अनेक नए स्वतंत्र राष्ट्रों की ओर विकसित देश अधिक सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं। इनमें उल्लेखनीय है इस्टोनिया, लिथूनिया, लाटविनया, यूकरेन आदि। परिणामतः भुगतान-शेष के घाटों की पूर्ति के लिए भारत को व्यावसायिक ऋणों का सहारा लेना पड़ रहा है। जिसका अभिप्राय यह है घाटों की पूर्ति के वास्ते अब अपेक्षाकृत ऊँची कीमत चुकानी पड़ रही है। और यही है भुगतान-शेष विषयक चिंता की बात।

बोध प्रश्न 2

1) भारत के भुगतान-शेष के संदर्भ में कौन-सी अवधि सबसे कठिन रही है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में भुगतान-शेष की कठिनाइयों के चार प्रमुख कारण बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

23.6 समस्या के समाधान के लिए अपनाए गए उपाय

भुगतान-शेष के घाटों से निपटने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की दृष्टि से समस्त अवधि को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (1) 1951-91, तथा (2) 1991 के पश्चात्

1) **1991 तक की अवधि**— इस अवधि में भुगतान-घाटों से निपटने के लिए जो प्रमुख कदम उठाए गए उनमें से कुछ एक ये हैं : (i) आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों को बढ़ावा देना, (ii) आयातों पर भौतिक प्रतिबन्ध लगाना, (iii) निर्यात सम्वर्धन के लिए विशेष प्रोत्साहन देना, तथा (iv) अदृश्य मदों से प्राप्त विदेशी मुद्रा को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रोत्साहन प्रदान करना। इन सभी नीतिगत उपायों को सीमित सफलता ही प्राप्त हो पाई थी जैसा कि इस बात से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1990 के लगभग भारत को कठिन भुगतान-शेष की समस्या का सामना करना पड़ा था।

2) **1991 के पश्चात्**— इस अवधि में भुगतान-शेष की समस्या से निपटने के लिए एक व्यापक नीति का निर्माण कर उसे क्रियांवित किया गया। भुगतान-शेष की रणीनीति के प्रमुख तत्त्वों को संक्षिप्त रूप में नीचे प्रस्तुत किया गया है।

क) वित्तीय एवं मौद्रिक अनुशासन

सामूहिक माँग को नियंत्रित करने के लिए कठोर वित्तीय एवं मौद्रिक अनुशासन को लागू करने के प्रयास किए गए हैं। केंद्र सरकार के बजट में वित्तीय घाटा जोकि 1990-91 में GDP के 8.4 प्रतिशत के बराबर था क्रमशः कम किया गया है। वर्ष 1998-99 के बजट में इसके GDP के 5.6 प्रतिशत तक रह जाने के प्रावधान किए गए हैं।

इसी तरह मौद्रिक नीति के समक्ष प्रमुख उद्देश्य मुद्रा की आपूर्ति दर को नियंत्रित करना है। मुद्रा की आपूर्ति दर जो कि वर्ष 1991-92 में 18.5 प्रतिशत थी वर्ष 1995-96 में कम होकर 13.2 प्रतिशत तथा वर्ष 1998-99 में 17.8 प्रतिशत रह गई।

ख) विनिमय दर नीति एवं विदेशी व्यापार नीति में सुधार

वर्ष 1993 तक भारतीय मुद्रा की विदेशी विनिमय दर भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती थी। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जुलाई 1991 में रुपए का लगभग 20 प्रतिशत की दर से अवमूल्यन किया गया। रुपए के अवमूल्यन का प्रमुख उद्देश्य भारत के निर्यातों को प्रोत्साहन प्रदान करना था। 1 मार्च 1993 से विनिमय दर प्रणाली को ही बदल दिया गया। अब भारतीय मुद्रा की विनिमय दर बाज़ार में माँग और आपूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। इसी तरह वर्ष 1994-95 के संघीय बजट में चालू खाते पर रुपए की पूर्ण परिवर्तनीयता की घोषणा की गई। जिसके अनुसार अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संव्यवहारों पर लगे अनेक तरह के बन्धनों को हटा लिया गया है।

आर्थिक संव्यवहारों को ढील देने के क्रम में विदेशी व्यापार नीति में भी आवश्यक सुधार किए गए हैं। व्यापार-शेष के घाटे को दूर करने के लिए पूँजीगत वस्तुओं, कच्चे माल और संघटकों पर आयात नियंत्रणों को प्रायः समाप्त कर दिया गया है। शीर्ष तटकरों, विशेषकर पूँजीगत तटकरों में बहुत कटौती की गई है। आयात ऋण पर नकद अपेक्षाओं व ब्याज अधिकार को समाप्त कर दिया गया है।

ग) संरचनात्मक सुधार

इनमें प्रमुखतः निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं : (i) उद्योग व व्यापार पर नियंत्रणों में बहुत ढील दी गई है। (ii) कई उद्योगों को विलाइसंसीकृत कर दिया गया है। (iii) कई क्षेत्र जो पहले केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे अब प्रतिस्पर्धा बढ़ाने की दृष्टि से निजी व विदेशी निवेश के लिए मुक्त कर दिए गए हैं। (iv) प्रत्यक्ष विदेशी एवं पत्राधान निवेश (portfolio investment) को आकर्षित करने के लिए नीतिगत उपाय अपनाए गए हैं। (v) वित्तीय क्षेत्र में तथा कर प्रणाली में अनेक सुधारों को लागू किया गया है।

बहुपक्षीय एजेंसियों तथा द्विपक्षीय दानकर्ताओं से अपवादिक वित्तीयन का संघटन किया गया। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से सहारे के विन्यास (Stand-by arrangements) किए गए। विश्व बैंक से संरचनात्मक समन्वयकारी और सामाजिक सुरक्षा जाल ऋण प्राप्त किए गए। एशियाई विकास बैंक से भी संरचनात्मक क्षेत्र ऋणों के समझौते किए गए।

परिणाम (Results)— भुगतान-शेष की समस्या से निपटने के लिए वर्तमान में अपनाई गई रणनीति पूर्ण रूप से समस्या का हल ढूँढ निकालने में सक्षम हैं। परिणाम भी शीघ्र ही

सामने आते दिखलाई दिए हैं। भुगतान-शेष के घाटों के दबाव क्रमशः शिथिल पड़ते जा रहे हैं। इस बात से पता चलता है कि देश के विदेशी मुद्रा भंडारों में निरन्तर वृद्धि जारी है। भारत में विदेशी मुद्रा भंडार जो कि वर्ष 1991 में केवल 2,236 मिलियन थे वर्तमान में बढ़कर 30,000 मिलियन से अधिक हो चुके हैं जैसा कि तालिका-2 से स्पष्ट है।

तालिका-2 : भारत के विदेशी मुद्रा भंडार

	मार्च के राशि अन्त $ मिलियन	आयात-अवधि के लिए पर्याप्त (मास)	चालू भुगतानों के लिए पर्याप्त (मास)
1951	1914	16.8	14.6
1961	390	2.0	1.7
1971	584	2.9	2.2
1981	5850	4.5	4.0
1991	2236	1.0	0.8
1995	20708	8.2	5.9
1996	16018	5.44	3.8
1997	21261	7.0	4.0
1998	25975	7.5	4.5
1999	29522	7.5	4.5

तालिका-2 से स्पष्ट है कि जहाँ वर्ष 1991 में उपलब्ध विदेशी मुद्रा के भंडार मात्र एक माह के आयात अथवा 0.8 माह के चालू भुगतानों के लिए भी पर्याप्त नहीं थे अब बढ़कर 7.0 माह की आयात आवश्यकताओं अथवा 4 मास के चालू भुगतानों के लिए भी पर्याप्त हो रहे हैं। विदेशी मुद्रा भंडारों के सहारे विदेशी व्यापार नीति में उदारता बरतना और लचीलापन लाना सम्भव हो रहा है। अन्त में, निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत ने भुगतान-शेष के घाटों के निपटने के लिए एक समुचित नीति का गठन किया है तथा इसके परिणाम भी सुखद रहे हैं। किन्तु उल्लेखनीय है कि समस्या पर पूरी तरह से काबू पा लेना सम्भव नहीं हो पाया है। चालू खाते पर घाटों की स्थिति पूर्ववत् बनी हुई है और इन घाटों का आकार बढ़ता जा रहा है। विकास-क्रम में आयातों की आवश्यकताएँ बढ़ती ही रहेंगी। परिणामस्वरूप यह आवश्यक है कि हम निर्यातों के बढ़ानें में विशेष रुचि रखें और इस वास्ते सुडौल नीति का गठन करें। अन्यथा चालू खाते के बढ़ते घाटे हमारे विकास क्रम में गंभीर बाधा बन कर सामने आ सकते हैं।

23.7 भारत में निर्यात प्रोत्साहन

"Export or Perish" अर्थात् "निर्यात कीजिए अथवा लुप्त हो जाइए" का उपदेश अतीत में कभी इतना सार्थक नहीं था जितना यह अब वर्तमान में है।

23.7.1 निर्यात संवर्धन का औचित्य

निर्यातों की मात्रा को बढ़ाना आर्थिक दृष्टि से आज जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है। ऐसा क्यों है? इसके लिए अनेक कारक ज़िम्मेदार हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

पहला, भारत की आयातों की आवश्यकताएँ निरन्तर बढ़ती ही रहेंगी ऐसी अपेक्षा की जानी चाहिए बशर्ते कि हम अपनी विकास क्रिया को धीमा करने के लिए तैयार हों। विकास-क्रम में तेल तथा निवेश से व्युत्पन्न विदेशी तकनीक और पूँजीगत सामान के आयातों में होने वाले खर्च में अप्रत्याशित वृद्धि सम्भावित है। इसी प्रकार गैर-तेल कच्चे माल के आयातों में भी राशि वृद्धि की सम्भावना को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इन सबके वास्ते निर्यात के जरिए भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा का प्रबंध करना होगा।

दूसरा, अतीत के अनुभवों के आधार पर यह हमारे हित में नहीं होगा कि आवश्यक वस्तुओं के आयात के वित्तीयन के लिए हम विदेशी सहायता पर निर्भर रहें। जहाँ तक इस स्रोत से वित्तीयन उपलब्ध हैं हम इनका समुचित प्रयोग कर सकते हैं किन्तु विभिन्न विकल्पों को भी हमें बराबर मज़बूती से अपने साथ बाँधे रखना होगा। यदि स्थिति ऐसी बिगड़ जाएँ कि विदेशी सहायता के प्रवाह में अनदेखी रुकावटें आने लगें तो हमें विकल्पों का सहारा सुलभ होना चाहिए।

तीसरा, विदेशी ऋण-सेवा पर होने वाले व्यय की राशि का भारी बोझ हम पर पहले से ही बना हुआ है। इस बोझ में और वृद्धि को सहन करना शायद हमारी सामर्थ्य से बाहर होगा। अतः नए अतिरिक्त आयातों के वास्ते हमें अतिरिक्त निर्यातों की व्यवस्था करनी होगी।

चौथा, आधुनिकतम तकनीक बड़े पैमाने के उत्पादन के हक में है। बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि बाज़ार के आकार का विस्तार किया जाए। नए अन्तरराष्ट्रीय बाज़ारों की सहायता से इस प्रकार का विस्तार सम्भव हो सकता है।

पाँचवाँ, देश में यदा-कदा खाद्य-तेल, चीनी, खाद्यान्न आदि उपभोक्ता वस्तुओं की कमी भी उत्पन्न हो जाती है जोकि आर्थिक अस्थिरता को जन्म देती है। ऐसी वस्तुओं के आयात को भी भुलाया नहीं जा सकता।

अन्त में, हाल ही में आर्थिक सुधार कार्यक्रम का एक सुखद परिणाम यह रहा है कि भारत से अनेक तरह की नई वस्तुओं के निर्यात करना सम्भव हो पाया है। इनमें कुछ एक वस्तुएँ श्रम-गहन तकनीक का उपयोग करती हैं। ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में भारत को तुलनात्मक श्रेष्ठता प्राप्त है। ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में विस्तार करके पहली बार अब सम्भव प्रतीत हो रहा है कि निर्यातों के रास्ते भारत से निर्धनता को समूल उखाड़ फैंकना सम्भव हो पाएगा, बिल्कुल वैसे जैसे कि कुछ वर्ष पहले पूर्वी एशिया के देशों ने इस तरह का चमत्कार अनुभव किया था।

संक्षेप में, भारत की वर्तमान परिस्थिति में निर्यात संवर्धन का दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

23.7.2 निर्यात सम्वर्धन के लिए उपाय

निर्यात सम्वर्धन में अनेक क्षेत्रों का योगदान अपेक्षित है। यह बात ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा निर्यात सम्वर्धन का जो कार्यक्रम तैयार किया गया है। उसमें सभी सम्बद्ध क्षेत्रों को शामिल करने के प्रयास किए गए हैं। हम इनमें से कुछ प्रमुख पहलूओं पर प्रकाश डालेंगे।

क) निर्यात के लिए उत्पादन

निर्यात क्षेत्र को प्राथमिकता क्षेत्र में शामिल किया गया है। वे सभी औद्योगिक इकाइयाँ जो कि अपने कुल उत्पादन का 10 प्रतिशत या उससे अधिक भाग का निर्यात करती हैं उन्हें निर्यात उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इसी तरह लघु

उद्योगों एवं विदेशी कम्पनियों को भी निर्यात के लिए करती हैं उनके लिए लाइसेंस व्यवस्था को बहुत सरल बनाया गया है। इन्हें शुल्क-रहित कच्चे माल, मशीनों आदि के आयात की छूट प्रदान की जाती है।

निर्यात के लिए उत्पादन बढ़ाने के साथ सरकार का उद्देश्य वस्तुओं की गुणवत्ता को नियंत्रित करना है। जहाज पर लदान से पहले माल की गुणवत्ता की कड़ी जाँच की जाती है।

ख) **निर्यात साख एवं वित्त**

निर्यात के माल के जहाज पर लदान से पहले तथा लदान के बाद साख और वित्त की व्यवस्था की जाती है। निर्यात करने वाली औद्योगिक इकाइयों को वाणिज्य बैंक रियायती ब्याज की दरों पर ऋण की सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

निर्यात-आयात बैंक

1 जनवरी, 1982 को विदेशी व्यापार का विकास करने के उद्देश्य से निर्यात-आयात बैंक की स्थापना की गई। इस बैंक ने अन्तरराष्ट्रीय व्यापार से संबंधित वित्त का समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया है। यह बैंक आयात ऋणों, व्यापार बैंकिंग, विकास बैंकिंग, तकनीकी आदि कार्यों को भी सम्पन्न करता है।

ग) **निर्यात प्रोत्साहन एवं सहायता**

निर्यात सम्वर्धन के लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के वित्तीय प्रोत्साहन दिए जा रहे हैं जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

i) वित्तीय प्रोत्साहन

इनमें आय करों में छूट, सीमा शुल्क में छूट, बिक्री कर में छूट आदि प्रमुख हैं।

ii) मौद्रिक प्रोत्साहन

इनमें निर्यात सम्वर्धन के लिए दिए गए ऋणों की सुविधाओं को शामिल किया जाता है।

iii) विशेष प्रोत्साहन योजनाएँ

सरकार द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिए पंजीकृत निर्यातकर्ताओं को कच्चे माल, अर्द्ध-निर्मित माल, औजार की आसान उपलब्धि के रूप में सहायता की जाती है। इसी प्रकार कुछ परम्परागत वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए शुल्क-रहित कच्चे माल के आयात की छूट दी जाती है।

घ) **संगठनात्मक व्यवस्था**

सरकार ने निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिए कई विशिष्ट संस्थाओं जैसे The Central Advisory Board on Trade, Trade Development Authority, Federation of Indian Export Organisations, Commodity Boards, Export Promotion Councils आदि का गठन किया है। इसके अलावा State Trading Corporation, Minerals and Metals Trading Corporation आदि संगठन भी विदेशी व्यापार के विकास में काफी सहयोग प्रदान करते हैं।

23.7.3 निर्यात प्रोत्साहन कार्यक्रम की कमियाँ

i) निर्यात सम्वर्धन कार्यक्रम की प्रमुख कमी यह है कि हम अपने निर्यात-उत्पादों की मूल्य प्रतिस्पर्धात्मकता एवं लाभ-प्रदता पर ही अपना समस्त ध्यान केंद्रित किए हुए हैं। इसी ध्येय से विभिन्न राजकोषीय, वित्तीय, मौद्रिक और अन्य प्रोत्साहन निर्यातकों को प्रदान किए जाते हैं कि अपेक्षाकृत ऊँची लागत पर उत्पादन करने के बाद भी वे अन्तरराष्ट्रीय बाज़ारों में कम कीमत पर अपना सामान बेचने को प्रेरित हों। इसमें कोई संदेह नहीं कि विदेशी बाज़ारों में उत्पाद की कीमतों की अहम् भूमिका होती है किंतु हम अन्य कारकों की अनदेखी नहीं कर सकते। इन कारकों में प्रमुख हैं उत्पादों की गुणवत्ता तथा ठीक समय पर उत्पादों की आपूर्ति आदि। हमें निर्यात सम्वर्धन कार्यक्रम में इन बातों पर भी उतना ही ध्यान देना होगा।

ii) अन्तरराष्ट्रीय बाज़ारों से संबंधित सूचना अनेक बोर्डों एवं संगठनों द्वारा अपने तरीकों से एकत्र एवं प्रकाशित की जाती है। किंतु, इन्हें किसी एक समन्वित ढंग से एकत्र और प्रकाशित करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। वर्तमान में जबकि अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा निरन्तर बढ़ती जा रही है सूचना संबंधी इन प्रयासों पर विशेष ध्यान देना होगा।

iii) अनेक बार निर्यात उत्पादों पर विभिन्न परोक्ष कर वसूल कर लिए जाते हैं और बाद में वापिस अदायगी कर दी जाती है। यह सारी प्रक्रिया अर्थहीन प्रतीत होती है जिसमें मूल्यवान साधनों को अनुत्पादक उपयोग ही हो पाता है। इस तरह की कार्यप्रणाली को बदलना होगा।

iv) सरकार से उपलब्ध सहायता का लाभ उठाने के लिए उत्पादकों को विभिन्न प्रशासनिक कठिनाइयाँ झेलनी होती हैं। सरकारी काम काज में सरल प्रणाली अपनाए जाने की भूमिका पर विशेष ध्यान देना होगा।

बोध प्रश्न 3

1) 1991 के पश्चात् भुगतान-संतुलन में सुधार के लिए अपनाए गए चार उपाय बताइए।

.....

.....

.....

.....

') भारत में भुगतान-संतुलन की समस्या से निपटने के लिए अपनाई गई रणनीति की प्रमुख बातें बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत की आर्थिक नीति में किए गए प्रमुख संरचनात्मक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

23.8 निर्यात-युक्ति

हम देश के लिए निर्यात संवर्धन की भावी नीति के निर्माण के वास्ते निम्नलिखित सुझाव दे सकते हैं :

1) निर्यात-योग्य उत्पादन को सुडोल आधार निर्मित करना

सुदृढ़ एवं व्यवहार्य निर्यात-योग्य उत्पादन का आधार निर्मित करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए हैं। वर्तमान निर्यात की माँग को पूरा करने के लिए आधारभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार, निर्यात-जन्य क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाने में आधारभूत सुविधाओं को अभाव बाधा प्रस्तुत कर रहा है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि चाहे घरेलू माँग का प्रभाव कितना भी अधिक क्यों न हो, कुल उत्पादन का एक निश्चित माँग निर्यात के लिए आरक्षित किया जाना चाहिए।

2) उपयुक्त तकनीकी की आपूर्ति

यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल निर्यात क्षमता का विस्तार ही पर्याप्त नहीं है, इसके लिए उपयुक्त तकनीकी विकास आवश्यक है ताकि वस्तुएँ अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार की प्रतियोगिता में टिक सकें। हमारे देश एवं विश्व के तकनीकी विकास के स्तर में बड़ा अन्तर विद्यमान है। हमारी तकनीक देश की आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल हो सकती है लेकिन निर्यात की दृष्टि से यह काफी पिछड़ी हुई है। तकनीकी विकास के साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि वस्तुओं के पैकिंग के स्तर की उत्कृष्टता पर भी ध्यान दिया जाए।

3) मध्यवर्ती वस्तुओं की रियायती मूल्यों पर उपलब्धि

भारत में प्लास्टिक, इस्पात, धातु, शीशा आदि औद्योगिक मध्यवर्ती वस्तुओं का अभाव होने के कारण इनकी कीमतें अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार की कीमतों से ऊँची उत्पादन-लागत पर ही तैयार हो पाते हैं और इनकी प्रतिस्पर्धा की शक्ति कम हो जाती है। इस वास्ते आवश्यक है कि भारतीय उत्पादकों को ये वस्तुएँ रियायती दरों पर उपलब्ध करवाई जाएँ।

4) निर्यातों की सीमाबद्धता

अब तक हमारा प्रयत्न रहा है कि देश की घरेलू माँग को पूरा करने के बाद जो कुछ अवशेष रहता है उसका निर्यात कर दिया जाए। लेकिन नियोजित निर्यातों के लिए यह आवश्यक है कि उन सभी वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रयास किए जाने चाहिए जिनके लिए आसानी से बाज़ार उपलब्ध हो सकें। लेकिन यदि हम विश्व के आयातों में शामिल होने वाली वस्तुओं पर एक नज़र डालें तो मालूम होता है कि हम उन सभी वस्तुओं को उत्पादन करने में असमर्थ हैं जिनकी विश्व के बाज़ारों में माँग की जाती है। इसलिए इस बात का निर्णय बहुत

सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए कि निर्यातों के लिए भारत को किन वस्तुओं का उत्पादन करना चाहिए। भारत को जहाँ तक सम्भव हो सके पूँजी-गहन, शक्ति अथवा परिवहन-गहन वस्तुओं के उत्पादन में हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

5) भंडार-गोदाम सुविधाओं का विस्तार

द्रुतगामी उपभोक्ता वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं के लिए विदेशों में महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्रों में भंडारों एवं गोदामों का निर्माण किया जाना चाहिए। आजकल विदेशी विक्रेता वस्तुओं के स्टॉक अपने पास रखने में रुचि नहीं रखते। उनका प्रयास यही रहता है कि वे निर्यातकर्ताओं से अल्प-सूचना पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में वस्तुएँ प्राप्त करते रहें। यद्यपि भंडारों के निर्माण में काफी लागत आती है, लेकिन दीर्घकालीन दृष्टि से यह उपाय लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। इनकी सहायता से बाज़ारों के साथ निकटवर्ती एवं सुदृढ़ संबंध स्थापित किए जा सकते हैं।

6) व्यापार-सूचना की आपूर्ति

आवागमन और सूचना के माध्यमों के तेज विकास के कारण बाज़ार की परिस्थितियाँ बहुत तेजी से बदलती रहती हैं। कोई एक उत्पादक अथवा उपकर्मी इस प्रकार की व्यवस्था करने में असमर्थ होता है कि उसे ये सब जानकारी सुलभ हो। इस तरह की सुविधाएँ उपलब्ध करवाने के लिए एक संगठनात्मक ढाँचा विकसित करना होगा।

7) बाज़ारों की विविधता एवं आकार में वृद्धि

निर्यात-सम्वर्धन के वास्ते एक ओर हमें नए बाज़ारों में बड़ी मात्रा में बिक्री करने के प्रयास करने होंगे। इस वास्ते हम निम्न बातों की सिफारिश करेंगे। (i) हम अपनी परम्परागत निर्यात की वस्तुओं के बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा में पिछड़ चुके हैं। हमें प्रयास करने होंगे कि इस तरह की वस्तुओं के बाज़ारों में हम अपनी प्रभुता बना पाएँ। इन वस्तुओं में प्रमुख हैं : चाय, मसाले, पटसन, चमड़े का सामान, अभ्रक एवं अन्य कृषि-जन्य पदार्थ। (ii) खली, बासमती, चावल, समुद्री उत्पाद आदि वस्तुओं के निर्यातों में भारी बढ़ोतरी की सम्भावनाओं पर ध्यान देना होगा। (iii) रसायन, इंजीनियरी का सामान, आभूषण, सिले-सिलाए कपड़ों, हथकरघा एवं सॉफ्टवेयर आदि के निर्यातों में पिछले कुछ वर्षों के दौरान हर्षवर्धक वृद्धि हुई है। हमें इनकी गति और तेज करनी होगी।

अन्त में, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक सुदृढ़ एवं कुशल घरेलू आर्थिक ढाँचे का निर्माण करके ही हम एक स्वस्थ निर्यात क्षेत्र की स्थापना कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 4

1) आर्थिक-विकास की वर्तमान अवस्था में निर्यात सम्वर्धन की आवश्यकता की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत से निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए तीन कदम बतलाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निर्यातों को बढ़ाने के लिए हमें क्या कदम उठाने चाहिए।

.....

.....

.....

.....

.....

23.9 सारांश

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में विकासक्रम के दौरान आयातित वस्तुओं की माँग निरन्तर बढ़ती ही जाती है। चूँकि निर्यात उस गति से नहीं बढ़ पाते परिणामतः निर्यातों और आयातों में एक असंतुलन उत्पन्न होता है जोकि भुगतान-शेष में घाटे के रूप में परिलक्षित होता है इस घाटे की आपूर्ति विदेशों से ऋण लेकर की जाती है। भुगतान-शेष के घाटों का स्थायी समाधान तभी मिल सकता है जबकि देश से निर्यातों की मात्रा में भारी वृद्धि हो। इस वास्ते निर्यात-सम्वर्धन नीति का निर्माण करना होगा।

23.10 शब्दावली

भुगतान-शेष : एक देश के सभी आर्थिक अन्तरराष्ट्रीय संव्यवहारों का वार्षिक लेखा-जोखा

व्यापार-शेष : एक देश की केवल दृश्य मदों के लेन-देन का वार्षिक लेखा-जोखा

चालू खाता : एक देश की दृश्य एवं अदृश्य मदों के लेन-देन का वार्षिक लेखा-जोखा

पूँजी खाता : एक देश की विदेशों से पूँजी में लेन-देन का वार्षिक लेखा-जोखा

पत्राधान निवेश : विदेशियों द्वारा देशी कम्पनियों के अंशपत्रों, बॉण्ड , डिम्बेंचर दृश्य एवं अदृश्य मदों की बिक्री से प्राप्त आगम उनकी खरीद पर किए गए भुगतान से कम होती है।

आयात सघनता : किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त आदानों में आयातों का अनुपात

रियायती सहायता : आसान शर्तों पर ऋण के रूप में उपलब्ध विदेशी सहायता।

23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Reserve Bank of India : Balance of Payments Manual

Reserve Bank of India : Report on Current and Finance

Government of India : Economic Servey

Vijay Joshi and I.M.D. Little : India's Economic Reforms 1991-2001

23.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 23.2 का पहला पैरा देखें।

2) उप-भाग 23.2.1 देखें।

3) उप-भाग 23.2.1 देखें।

4) उप-भाग 23.2.1 का आखिरी पैरा देखें।

बोध प्रश्न 2

1) उप-भाग 23.4.4 देखें।

2) भाग 23.5 पर अच्छी तरह से गौर करें।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 23.6 पढ़ें।

2) भाग 23.6 पर गौर करें।

3) भाग 23.6 देखें।

बोध प्रश्न 4

1) उप-भाग 23.7.1 देखें।

2) उप-भाग 23.7.2 देखें।

3) भाग 23.8 का भलीभाँति अध्ययन करें।